अवश्य ही ऐसे महात्माओंका मिलना बहुत ही दुर्लभ है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
(७। ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई ही मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें कोई ही पुरुष (मेरे परायण हुआ) मुझको तत्त्वसे जानता है।'

जो भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, उसके लिये सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा उसीका आत्मा हो जाता है। क्योंकि परमात्मा सबके आत्मा हैं और वह भक्त परमात्मामें स्थित है। इसलिये सबका आत्मा ही उसका आत्मा है। इसके सिवा 'सर्वभूतात्मभूतात्मा' (गीता ५। ७) यह विशेषण भी उसीके लिये आया है। वह पुरुष सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंको अपने आत्मामें और आत्माको सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें देखता है। उसके ज्ञानमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके और अपने आत्मामें कोई भेद-भाव नहीं रहता।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
(ईश० ६)

'जो समस्त भूतोंको अपने आत्मामें और समस्त भूतोंमें अपने आत्माको ही देखता है, वह फिर किसीसे घृणा नहीं करता।'

सर्वत्र ही उसकी आत्मदृष्टि हो जाती है, अथवा यों कहिये कि उसकी दृष्टिमें एक विज्ञानानन्दघन वासुदेवसे भिन्न और कुछ भी नहीं रहता। ऐसे ही महात्माओंकी प्रशंसामें भगवान्‌ने कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

(गीता ७ । १९)

'सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार (जाननेवाला) महात्मा अति दुर्लभ है।'

खेदकी बात है कि आजकल लोग स्वार्थवश किसी साधारण-से-साधारण मनुष्यको भी महात्मा कहने लगते हैं। 'महात्मा' या 'भगवान्' शब्दका प्रयोग वस्तुतः बहुत समझ-सोचकर किया जाना चाहिये। वास्तवमें महात्मा तो वे ही हैं जिनमें महात्माओंके लक्षण और आचरण हों। ऐसे महात्माका मिलना बहुत ही दुर्लभ है, यदि मिल भी जायँ तो उनका पहचानना तो असम्भव-सा ही है, 'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च' (नारदसूत्र ३९) 'महात्माका संग दुर्लभ, दुर्गम और अमोघ है।'

साधारणतया उनकी यही पहचान सुनी जाती है कि उनका संग अमोघ होनेके कारण उनके दर्शन, भाषण और आचरणोंसे मनुष्योंपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। ईश्वर-स्मृति, विषयोंसे वैराग्य, सत्य, न्याय और सदाचारमें प्रीति, चित्तमें प्रसन्नता तथा शान्ति आदि सद्गुणोंका स्वाभाविक ही प्रादुर्भाव हो जाता है। इतनेपर भी बाहरी आचरणोंसे तो यथार्थ महात्माओं-को पहचानना बहुत ही कठिन है, क्योंकि पाखण्डी मनुष्य भी लोगोंको ठगनेके लिये महात्माओं-जैसा स्वाँग रच सकता है। इसलिये परमात्माकी पूर्ण दयासे ही महात्मा मिलते हैं और उन्हींकी दयासे उनको पहचाना भी जा सकता है।

महात्माओंके लक्षण

सर्वत्र समदृष्टि होनेके कारण उनमें रागद्वेषका अत्यन्त अभाव हो जाता है, इसलिये उनको प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक नहीं होता। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मबुद्धि होनेके कारण अपने आत्माके सदृश ही उनका सबमें प्रेम हो जाता है, इससे अपने और दूसरोंके सुख-दुःखमें उनकी समबुद्धि हो जाती है और इसीलिये वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें स्वाभाविक ही रत होते हैं। उनका अन्तःकरण अति पवित्र हो जानेके कारण

उनके हृदयमें भय, शोक, उद्वेग, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। देहमें अहंकारका अभाव हो जानेसे मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाकी इच्छाकी तो उनमें गन्धमात्र भी नहीं रहती। शान्ति, सरलता, समता, सुहृदता, शीतलता, सन्तोष, उदारता और दयाके तो वे अनन्त समुद्र होते हैं। इसीलिये उनका मन सर्वदा प्रफुल्लित, प्रेम और आनन्दमें मग्न और सर्वथा शान्त रहता है।

महात्माओंके आचरण

देखनेमें उनके बहुत-से आचरण दैवी सम्पदावाले सात्त्विक पुरुषोंके-से होते हैं, परन्तु सूक्ष्म विचार करनेपर दैवी सम्पदावाले सात्त्विक पुरुषोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था और उनके आचरण कहीं महत्त्वपूर्ण होते हैं। सत्यस्वरूपमें स्थित होनेके कारण उनका प्रत्येक आचरण सदाचार समझा जाता है। उनके आचरणोंमें असत्यके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता। अपना व्यक्तिगत किञ्चित् भी स्वार्थ न रहनेके कारण उनके आचरणोंमें किसी भी दोषका प्रवेश नहीं हो सकता; इसलिये उनके सम्पूर्ण आचरण दिव्य समझे जाते हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देते हुए ही विचरते हैं। वे किसीके मनमें उद्वेग करनेवाला कोई आचरण नहीं करते।

सर्वत्र परमेश्वरके स्वरूपको देखते हुए स्वाभाविक ही तन, मन और धनको सम्पूर्ण भूतोंके हितमें लगाये रहते हैं। उनके द्वारा झूठ, कपट, व्यभिचार, चोरी आदि दुराचार तो हो ही नहीं सकते। यज्ञ, दान, तप, सेवा आदि जो उत्तम कर्म होते हैं, उनमें भी अहंकारका अभाव होनेके कारण आसक्ति, इच्छा, अभिमान और वासना आदिका नाम-निशान भी नहीं रहता। स्वार्थका त्याग होनेके कारण उनके वचन और आचरणोंका लोगोंपर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उनके आचरण लोगोंके लिये अत्यन्त हितकर और प्रिय होनेसे लोग सहज ही उनका अनुकरण करते हैं। श्रीगीतामें भगवान् कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(३। २१)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी उसीके अनुसार बर्तते हैं, वे जो कुछ प्रमाण कर देते हैं, लोग भी उसीके अनुसार बर्तते हैं।'

उनका प्रत्येक आचरण सत्य, न्याय और ज्ञानसे पूर्ण होता है, किसी समय उनका कोई आचरण बाह्य-दृष्टिसे भ्रमवश लोगोंको अहितकर या क्रोधयुक्त मालूम

हो सकता है किन्तु विचारपूर्वक तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर वस्तुतः उस आचरणमें भी दया और प्रेम ही भरा हुआ मिलता है और परिणाममें उससे लोगोंका परम हित ही होता है। उनमें अहंता-ममताका अभाव होनेके कारण उनका बर्ताव सबके साथ पक्षपातरहित, प्रेममय और शुद्ध होता है। प्रिय और अप्रियमें उनकी समदृष्टि होती है। वे भक्तराज प्रह्लादकी भाँति आपत्ति-कालमें भी सत्य, धर्म और न्यायके पक्षपर ही दृढ़ रहते हैं। कोई भी स्वार्थ या भय उन्हें सत्यसे नहीं डिगा सकता।

एक समय केशिनी-नाम्नी कन्याको देखकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचन और अङ्गिरा-पुत्र सुधन्वा उसके साथ विवाह करनेके लिये परस्पर विवाद करने लगे। कन्याने कहा कि 'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ होगा, मैं उसीके साथ विवाह करूँगी।' इसपर वे दोनों ही अपनेको श्रेष्ठ बतलाने लगे। अन्तमें वे परस्पर प्राणोंकी बाजी लगाकर इस विषयमें न्याय करानेके लिये प्रह्लादजीके पास गये। प्रह्लादजीने पुत्रकी अपेक्षा धर्मको श्रेष्ठ समझकर यथोचित न्याय करते हुए अपने पुत्र विरोचनसे कहा कि 'सुधन्वा तुझसे श्रेष्ठ है, इसके पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं और इस सुधन्वाकी माता तेरी मातासे श्रेष्ठ है,

इसलिये यह सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी है।' यह न्याय सुनकर सुधन्वा मुग्ध हो गया और उसने कहा 'हे प्रह्लाद ! पुत्रप्रेमको त्यागकर तुम धर्मपर अटल रहे, इसलिये तुम्हारा यह पुत्र सौ वर्षतक जीवित रहे।'

श्रेयान्सुधन्वा त्वत्तो वै मत्तः श्रेयांस्तथाङ्गिराः।
माता सुधन्वनश्चापि मातृतः श्रेयसी तव।
विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव॥
पुत्रस्नेहं परित्यज्य यस्त्वं धर्मे व्यवस्थितः।
अनुजानामि ते पुत्रं जीवत्वेष शतं समाः॥
(महा० सभा० ६७। ८७-८८)

महात्मा पुरुषोंका मन और उनकी इन्द्रियाँ जीती हुई होनेके कारण न्यायविरुद्ध विषयोंमें तो उनकी कभी प्रवृत्ति ही नहीं होती। वस्तुतः ऐसे महात्माओंकी दृष्टिमें एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवसे भिन्न कुछ भी नहीं होनेके कारण यह सब भी लीलामात्र ही है, तथापि लोक-दृष्टिमें भी उनके मन, वाणी, शरीरसे होनेवाले आचरण परम पवित्र और लोकहितकर ही होते हैं। कामना, आसक्ति और अभिमानसे रहित होनेके कारण उनके मन और इन्द्रियोंद्वारा किया हुआ कोई भी कर्म अपवित्र या लोकहानिकर नहीं हो सकता। इसीसे वे संसारमें प्रमाणस्वरूप माने जाते हैं।

महात्माओंकी महिमा

ऐसे महापुरुषोंकी महिमाका कौन बखान कर सकता है ? श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, सन्तोंकी वाणी और आधुनिक महात्माओंके वचन इनकी महिमासे भरे हैं ।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है कि भगवान्‌को प्राप्त हुए भगवान्‌के दास भगवान्‌से भी बढ़कर हैं—

मोरे मन प्रभु अस बिसवासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम-सिन्धु घन सज्जन धीरा ।
चन्दन-तरु हरि सन्त समीरा ॥
सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुबीर-परायण, जेहि कुल उपज बिनीत ॥

ऐसे महात्मा जहाँ विचरते हैं वहाँका वायुमण्डल पवित्र हो जाता है । श्रीनारदजी कहते हैं—

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि । (नारदभ० ६९)

'वे अपने प्रभावसे तीर्थोंको (पवित्र करके) तीर्थ बनाते हैं, कर्मोंको सुकर्म बनाते हैं और शास्त्रोंको

सत्-शास्त्र बना देते हैं ।' वे जहाँ रहते हैं, वही स्थान तीर्थ बन जाता है या उनके रहनेसे तीर्थका तीर्थत्व स्थायी हो जाता है, वे जो कर्म करते हैं, वे ही सुकर्म बन जाते हैं, उनकी वाणी ही शास्त्र है अथवा वे जिस शास्त्रको अपनाते हैं, वही सत्-शास्त्र समझा जाता है ।

शास्त्रमें कहा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँ-
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥

(स्कन्दपु० माहे० कौ० खं० ४५ । १४०)

'जिसका चित्त अपार संवित् सुखसागर परब्रह्ममें लीन है, उससे कुल पवित्र, माता कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है ।'

धर्मराज युधिष्ठिरने भक्तराज विदुरजीसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं प्रभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥

(श्रीमद्भा० १ । १३ । १०)

'हे स्वामिन् ! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं (पापियोंके द्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें स्थित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्राप्त करा देते हैं ।'

महात्माओंका तो कहना ही क्या है, उनकी आज्ञा पालन करनेवाले मनुष्य भी परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् स्वयं भी कहते हैं कि जो किसी प्रकारका साधन न जानता हो वह भी महान् पुरुषोंके पास जाकर उनके कहे अनुसार चलनेसे मुक्त हो जाता है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३।२५)

'परन्तु दूसरे इस प्रकार मुझको तत्त्वसे न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं। वे सुननेके परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरसे निःसन्देह तर जाते हैं।'

महात्मा बननेके उपाय

इसका वास्तविक उपाय तो परमेश्वरकी अनन्य-शरण होना ही है, क्योंकि परमेश्वरकी कृपासे ही यह पद मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(१८।६२)

'हे भारत ! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी दयासे ही तू परमशान्ति और सनातन परमधामको प्राप्त होगा ।'

परन्तु इसके लिये ऋषियोंने और भी उपाय बतलाये हैं। जैसे मनु महाराजने धर्मके दश लक्षण कहे हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

(मनु० ६ । ९२)

'धृति, क्षमा, मनका निग्रह, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश धर्मके लक्षण हैं ।'

महर्षि पतञ्जलिने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये (जो कि आत्मसाक्षात्कारके लिये अत्यन्त आवश्यक है) एवं मनके निरोध करनेके लिये बहुत-से उपाय बतलाये हैं । जैसे—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।

(योगसूत्र १ । ३३)

'सुखियोंके प्रति मैत्री, दुःखियोंके प्रति करुणा,

पुण्यात्माओंको देखकर प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उपेक्षाकी भावनासे चित्त स्थिर होता है।'

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (२।३०)

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (२।३२)

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं और सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं।'

और भी अनेक ऋषियोंने महात्मा बननेके यानी परमात्माके पदको प्राप्त होनेके लिये सद्भाव और सदाचार आदि अनेक उपाय बतलाये हैं।

भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायमें श्लोक ७ से ११ तक 'ज्ञान' के नामसे और सोलहवें अध्यायमें श्लोक १-२-३ में 'दैवी सम्पदा' के नामसे एवं सतरहवें अध्यायमें श्लोक १४-१५-१६ में 'तप' के नामसे सदाचार और सद्गुणोंका ही वर्णन किया है।

यह सब होनेपर भी महर्षि पतञ्जलि, शुकदेव, भीष्म, वाल्मीकि, तुलसीदास, सूरदास यहाँतक कि स्वयं भगवान्‌ने भी शरणागतिको ही बहुत सहज और सुगम उपाय बताया है। अनन्य-भक्ति, ईश्वर-प्रणिधान,

अव्यभिचारिणी भक्ति और परम प्रेम आदि उसीके नाम हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे पार्थ ! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझको स्मरण करता है उस मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

'जो एक बार भी मेरे शरण होकर 'मैं तेरा हूँ' ऐसा कह देता है, मैं उसे सर्व भूतोंसे अभय प्रदान कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

इसलिये पाठक सज्जनोंसे प्रार्थना है कि ज्ञानी, महात्मा और भक्त बननेके लिये ज्ञान और आनन्दके भण्डार सत्यस्वरूप उस परमात्माकी ही अनन्य शरण लेनी चाहिये। फिर उपर्युक्त सदाचार और सद्भाव तो अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेपर उनकी दयासे

आप ही सारे विघ्नोंका नाश होकर भक्तको भगवत्-प्राप्ति हो जाती है। योगदर्शनमें कहा है—

'तस्य वाचकः प्रणवः', 'तज्जपस्तदर्थभावनम्',
'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'

(१ । २७—२९)

'उसका वाचक प्रणव (ओंकार) है।' 'उसका जप और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये।' 'इससे अन्तरात्माकी प्राप्ति और विघ्नोंका अभाव भी होता है।'

भगवत्-शरणागतिके विना इस कलिकालमें संसार-सागरसे पार होना अत्यन्त ही कठिन है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि-सुमिरि भव उतरहिं पारा॥

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विस्वास।
गाय राम-गुन-गन विमल, भव तर विनहिं प्रयास॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

'कलियुगमें हरिका नाम, हरिका नाम, केवल हरिका नाम ही (उद्धार करता) है, इसके सिवा अन्य उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है।'

'क्योंकि यह अलौकिक (अति अद्भुत) त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, जो पुरुष निरन्तर मुझको ही भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं यानी संसारसे तर जाते हैं ।'

हरि-माया-कृत दोष-गुन, बिनु हरि-भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मनमाहिं॥

महात्मा बननेके मार्गमें मुख्य विघ्न

ज्ञानी, महात्मा और भक्त कहलाने और बननेके लिये तो प्रायः सभी इच्छा करते हैं परन्तु उसके लिये सच्चे हृदयसे साधन करनेवाले लोग बहुत ही कम हैं। साधन करनेवालोंमें भी परमात्माके निकट कोई ही पहुँचता है क्योंकि राहमें ऐसी बहुत-सी विपद्-जनक घाटियाँ आती हैं जिनमें फँसकर साधक गिर जाते हैं। उन घाटियोंमें 'कञ्चन' और 'कामिनी' ये दो घाटियाँ बहुत ही कठिन हैं, परन्तु इनसे भी कठिन तीसरी घाटी मान-बड़ाई और ईर्ष्याकी है। किसी कविने कहा है—

कञ्चन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह ।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह ॥

इन तीनोंमें भी सबसे कठिन है बड़ाई। इसीको कीर्ति, प्रशंसा, लोकैषणा आदि कहते हैं। शास्त्रमें जो

तीन प्रकारकी तृष्णा (पुत्रैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा) बतायी गयी हैं, उन तीनोंमें लोकैषणा ही सबसे अधिक बलवान् है । इसी लोकैषणाके लिये मनुष्य धन, धाम, पुत्र, स्त्री और प्राणोंतकका भी त्याग करनेके लिये तैयार हो जाता है ।

जिस मनुष्यने संसारमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग कर दिया, वही महात्मा है और वही देवता तथा ऋषियोंद्वारा भी पूजनीय है । साधु और महात्मा तो बहुत लोग कहलाते हैं किन्तु उनमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग करनेवाला कोई विरला ही होता है । ऐसे महात्माओंकी खोज करनेवाले भाइयोंको इस विषयका कुछ अनुभव भी होगा । हमलोग पहले-पहल जब किसी अच्छे पुरुषका नाम सुनते हैं तो उनमें श्रद्धा होती है पर उनके पास जानेपर जब हमें उनमें मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा दिखलायी देती है, तब उनपर हमारी वैसी श्रद्धा नहीं ठहरती जैसी उनके गुण सुननेके समय हुई थी । यद्यपि अच्छे पुरुषोंमें किसी प्रकार भी दोषदृष्टि करना हमारी भूल है, परन्तु स्वभाव-दोषसे ऐसी वृत्तियाँ होती हुई प्रायः देखी जाती हैं और ऐसा होना बिल्कुल निराधार भी नहीं है । क्योंकि वास्तवमें एक ईश्वरके सिवा बड़े-से-बड़े गुणवान् पुरुषमें भी दोषोंका कुछ

मिश्रण रहता ही है। जहाँ बड़ाईका दोष आया कि झूठ, कपट और दम्भ भी आ ही जाते हैं, जब झूठ, कपट और दम्भको स्थान मिल जाता है तो अन्यान्य दोषोंके आनेको सुगम मार्ग बन जाता है। यह कीर्तिरूपी दोष देखनेमें छोटा-सा है परन्तु यह केवल महात्माओंको छोड़कर अन्य अच्छे-से-अच्छे पुरुषोंमें भी सूक्ष्म और गुप्तरूपसे रहता है। यह साधकको साधन-पथसे गिराकर उसका मूलोच्छेदन कर डालता है।

अच्छे पुरुष बड़ाईको हानिकर समझकर विचार-दृष्टिसे उसको अपनेमें रखना नहीं चाहते और प्राप्त होनेपर उसका त्याग भी करना चाहते हैं। तो भी यह सहजमें उनका पिण्ड नहीं छोड़ती। इसका शीघ्र नाश तो तभी होता है जब कि यह हृदयसे बुरी लगने लगे और इसके प्राप्त होनेपर यथार्थमें दुःख और घृणा हो। साधकके लिये साधनमें विघ्न डालनेवाली यह मायाकी मोहिनी मूर्ति है, जैसे चुम्बक लोहेको, स्त्री कामी पुरुषको, धन लोभी पुरुषको आकर्षण करता है, यह उससे भी बढ़कर साधकको संसारसमुद्रकी ओर खींचकर उसे इसमें बरबस डुबो देती है। अतएव साधकको सबसे अधिक इस बड़ाईसे ही डरना चाहिये। जो मनुष्य बड़ाईको जीत लेता है वह सभी विघ्नोंको जीत सकता है।

योगी पुरुषोंके ध्यानमें तो चित्तकी चञ्चलता और आलस्य ये दो ही महाशत्रुके तुल्य विघ्न करते हैं! चित्तमें वैराग्य होनेपर विषयोंमें और शरीरमें आसक्तिका नाश हो जाता है, इससे उपर्युक्त दोष तो कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते, परन्तु बड़ाई एक ऐसा महान् दोष है जो इन दोषोंके नाश होनेपर भी अन्दर छिपा रहता है। अच्छे पुरुष भी जब हम उनके सामने उनकी बड़ाई करते हैं तो उसे सुनकर विचारदृष्टिसे इसको बुरा समझते हुए भी इसकी मोहिनी शक्तिसे मोहित हुए-से उस बड़ाई करनेवालेके अधीन-से हो जाते हैं। विचार करनेपर मालूम होता है कि इस कीर्तिरूपी मोहिनी शक्तिसे मोहित न होनेवाले वीर करोड़ोंमें कोई एक ही है। कीर्तिरूपी मोहिनी शक्ति जिनको नहीं मोह सकती, वही पुरुष धन्य है, वही मायाके दासत्वसे मुक्त है, वही ईश्वरके समीप है और वही यथार्थ महात्मा है। यह बहुत ही गोपनीय रहस्यकी बात है।

जिसपर भगवान्‌की पूर्ण दया होती है, या यों कहें जो भगवान्‌की दयाके तत्त्वको समझ जाता है, वही इस कीर्तिरूपी दोषपर विजय पा सकता है। इस विघ्नसे बचनेके लिये प्रत्येक साधकको सदा सावधान रहना चाहिये।

श्रीहरिः

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित पुस्तकें—

१—तत्त्व-चिन्तामणि भाग १—सचित्र, पृष्ठ ३५०, मोटा कागज, मूल्य ॥=) सजिल्द ... ॥।-)

इसीका छोटा गुटका, सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।-) सजिल्द ... ।=)

२—तत्त्व-चिन्तामणि भाग २—पृष्ठ ६३२, मोटा कागज, मूल्य ॥।=) सजिल्द ... १=)

इसीका छोटा गुटका, सचित्र, पृष्ठ ७५०, मूल्य ।=) सजिल्द ... ॥)

३—तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३—पृष्ठ ४५८, ४ सुन्दर बहुरंगे चित्र, मूल्य ॥≤) सजिल्द ... ॥।=)

४—परमार्थ-पत्रावली भाग १—पृष्ठ १४४, मूल्य ... ।)

५—नवधा-भक्ति—मूल्य ... =)

६—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप—मूल्य ... -)॥

७—गीताका सूक्ष्म विषय—पाकेट-साइज, पृष्ठ ७०, मूल्य -)।

८—चेतावनी—पृष्ठ २४, मूल्य ...)।

९—गजलगीता—मूल्य आधा पैसा

नं० १० से २६ तककी पुस्तकोंमें तत्त्व-चिन्तामणि तीनों भागके ही कुछ चुने हुए लेख अलग पुस्तकाकार हैं।

१०—गीता-निबन्धावली—मूल्य ... =)॥

११—नारीधर्म—सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य ... -)॥

१२–श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा–मूल्य ··· -)॥

१३–सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय–मू० -)

१४–श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश–सचित्र, मूल्य ··· -)

१५–गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग–मू०)॥

१६–भगवान् क्या हैं ? मूल्य ···)॥

१७–भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय–पृष्ठ ३५, मूल्य)॥

१८–सत्यकी शरणसे मुक्ति–गुटका, पृष्ठ ३२, मू०)॥

१९–व्यापारसुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे मुक्ति–
पृष्ठ ३२, गुटका, मूल्य ···)॥

२०–त्यागसे भगवत्प्राप्ति–मूल्य ···)।

२१–धर्म क्या है ? मूल्य ···)।

२२–महात्मा किसे कहते हैं ? पृष्ठ २०, गुटका, मूल्य)।

२३–प्रेमका सच्चा स्वरूप–पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य)।

२४–हमारा कर्तव्य–पृष्ठ २२, गुटका, मूल्य ···)।

२५–ईश्वर दयालु और न्यायकारी है–पृष्ठ २०,
गुटका, मू० ···)।

२६–ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है–
पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य ···)।

विशेष जानकारीके लिये पुस्तकों तथा चित्रोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये ।

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर